Research Guru
Online Journal of Multidisciplinary Subjects (ISSN : 2349-266X)
Volume-13, Issue-1, June 2019
Impact Factor: 4.081
www.researchguru.net

आदिवासियों का कला-सौंदर्य

अनीता एच. भट्ट
३२, ब्रम्हाणी नगर सोसायटी, जी.ई.बी. के पास में खोलवाड़ा, सिद्धपुर, जिला -पाटन ।
(गुजरात) चलभाष : ९६२८० १६३१२

कला एवं सौंदर्य एक-दूसरे के सहयोगी है। कला यदि सौंदर्य से दूर है तो वह नीरस है, इसी प्रकार सौंदर्य कलात्मक न होने से मनोरम नहीं कहलाएगा। वस्तुतः कला तथा सौंदर्य प्राकृतिक परिवेश के अभिन्न उपकरण है।

आदिवासी-जीवन की सुंदरता प्रकृतिकी मनोहारिणी गोंद में फलती फूलती है। बस इसीलिए तो मनोहारिणी छटा तथा अनुपम अलंकृति इस आदिवासी संस्कृति-सभ्यता में चिरपोषित और परिष्कृत हो रही है वह अन्यत्र अनुपलब्ध है। प्राकृतिक सौरभ से सुरभित आदिवासी-व्यावहारिक सुषमा इतनी आकर्षक, स्वाभाविक, उद्दीपित एवं सशक्त है कि अनायास लोक की सत्य इसकी और उन्मुख हो जाती है ।

'सत्यं -शिवं -सुन्दरम्' की त्रिवेणी जब कला से सहज स्पर्श प्राप्त करती है, तब इसकी (त्रिवेणी) अभिराम अभिव्यक्ति बड़ी मार्मिक होती है। यह मार्मिकता आदिवासी कलात्मक सुन्दरता की उपयोगिता के गठबन्धन से मानव की रागात्मक प्रवृति को अधिकाधिक जीवन्त बनती है।

'कला कला के लिए' यह सिद्धांत आदिवासी याचना से बाहर है । उपयोगिता एवं प्रयोगात्मकता वनवासी कला-सौन्दर्याभिव्यक्ति की जीवित साँसे है । माँसल सौन्दर्य आदिवासी-मानस को सहसा प्रमुदित-प्रफुल्लित कर देता है और वह उसकी मनुहारों को स्वस्थ वातावरण के प्रांगल में मधुरता से संवेदनशील बना देता है । तिरस्कृत तथा उपेक्षित आदिवासी सुन्दरी अपने उत्सुक यौवन-लावण्य से अपने प्रेमी की फिर राग-वृति में आबद्ध कर लेती है । इसी भाँति पारस्परिक सम्मोहन चलता रहता है । कला का क्षेत्र व्यापक है और सौन्दर्य -संचरण-आकर्षण भी विशद है ।

एक आदिवासी भील गीत में प्रेमी-प्रेमिका का अंकुरित प्रेम-बीज सी प्रकार अपनी मज़िल की खोज कर उठता है -

प्रेमी - में तुम्हारे काले बालो पर मुग्ध हुँ ।
प्रेमिका - में तुम्हारे शारीरिक क्षमता से आकृष्ट हुँ ।
प्रेमी - सरिता का सलिल धीरे-धीरे बढ़ रहा है ।
प्रेमिका - मेरी अभिलाष-मछली अधिक आतुर है।
प्रेमी - आओ हम दोनों नदी के तट पर छिपकर बैठे तथा बीती बातो को दुहराए ।

कला जब स्वयं आनन्दप्रद है तो सौन्दर्य की सुखद अनुभूति कैसे भुलाई जा सकती है । दोनों का व्यत्युत्तिपरक अर्थ आनन्द ही हैं ।

कला की उत्पत्ति के विषय चर्चा करते हुए कहा गया है की जब मानव अपनी आवश्यकताओ से आगे बढाकर अलंकरण की प्रवृति अपनाता है तभी कला का जन्म होता है । इससे हमारी ज्ञानेन्द्रियो को तृप्ति तो मिलती ही है तभी कला का जन्म होता है, साथ ही में कर्मेन्द्रीयो का कौशलपूर्ण नियोजन भी होता है । प्रारम्भिक युग में अज्ञात शक्तियो को प्रसन्न करने

के लिए नाच-गाने की प्रतिष्ठा बढ़ी. उसमे भी हमें ललित कलाओ के उद्ग्म के बीज मिलते है । इन कलाओ के उन्मेष के तीन विशेष कारन है -

(१) आदिम निवासियों की अदृश्य शक्ति को प्रसन्न करने की भावना एवं बालको को खेलने की स्वाभाविक प्रेरणा ।

(२) लोक-मंगल की प्रवृति ।

(३) आत्म-प्रदर्शन की इच्छा ।

क्रोचे के मतानुसार कला एक अखंड आत्माभिव्यक्ति है, जिसे विभाजित नहीं किया जा सकता । फिर भी व्यावहारिक द्रुष्टि से इसे तीन वर्गों में विभाजित किया जा सकता है ।

(अ) उदार कलाएँ - (उपयोगी कला) इनका उदेश्य मनुष्य की आवश्यकताओं की पूर्ति करना और उसके उपयोग के साधन बनाना है । ये हमारे दैनिक जीवन से धनिष्ठ सम्बन्ध रखती है । यथा - बढ़ई , लुहार, सुनार, आदि के कार्य ।

(ब) आचार कलाएँ - शिष्टाचार से सम्बंधित भावनाओकी अभिव्यक्ति करने वाली कलाएँ इसके अन्तर्गत आते है ।

(क) ललित कलाएँ - उन मानवीय क्रियाओ को कहते है जो हमे सौन्दर्य -भावना की और प्रेरित करती हुई कलात्मक सृजन का कारण बनती है । पाशचात्य दार्शनिक हिगले ने लालती कला के पाँच भेद मने है - वास्तु, मूर्ति, चित्र, संगीत और काव्य ।

चित्रकला: आदिवासी की चित्रकला में बाहय आडम्बरो की पूर्ण उपेक्षा की गई है । सुलभ साधनो से ही यह चित्रकला आज तक जीवित है । परामुखापेक्षी न आदिवासी है और न उनकी विविध कलाएँ । धार्मिक भावना की प्रमुखता से समन्वित चित्रकला भूत-प्रेत रक्षा, अभिशापों से विमुक्ति, पारिवरिक समृद्धि आदि का विशेष ध्यान रखा जाता है । वैवाहिक संस्कारो के सम्पादन में जो चौक आदि पूरे जाते है उनमे भी देवी - देवताओं से यह प्रार्थना की जाती है की वे दम्पति के जीवन को सन्तानाभाव से कलुषित या अभिशप्त न करे । चुड़ैलों से ये वनवासी अधिक भयभीत रहते है । फलतः ये ऐसे चित्र यथावसर अंकित करते है जो चुड़ैलों से रक्षा करते हो ।

भीति-चित्र में मांगलिक अवसरों को मधुर व् आनन्दमय बनाने के लिए गाय, बैल, मोर, सर्प, आम्रवृक्ष, शेर आदि चित्र चित्रित किये जाते है । इस चित्रों से अलंकृत दीवारे बड़ी मनोरम लगती है । यह उल्लेखनीय है की कृतज्ञता इस कला में सर्वोपरि है। अत: इन सबका शुभ अवसरों पर स्मरण परमावशयक मन जाता है ।

"आदिवासीयो की कला को धर्म ने एक अन्य अत्यन्त मनोरंजक ढंग से प्रभावित किया है, जिसके उदहारण स्पष्तः हमें कोटापुट और गंजम के सावरा लोगो द्वारा बनाए गए सुन्दर भिति -चित्रों में मिलते है । कल्पित लोक की शक्ति और वास्तविकता के सम्बन्ध में उनकी कल्पना अत्यन्त प्रबल है जहाँ पर उनका विचार है की उनके देवता बहुत-प्रेत और उनके पूर्वज की आत्माएँ निवास करती है । ये अदृश्य आत्माए मानव-जीवन में निरंतर व्याधात उपस्थित रहती यही इसलिए नान प्रकार की बलि देकर और उनकी अहं भावनाओ को सन्तुष्ट करके उन्हें प्रसन्न करना अत्यन्त आवश्यक है । घर की दीवारों पर चित्र बनाना इनका इसी प्रकार का एक प्रयास है । ये चित्र मृतात्मा के सन्मान में, रोगो को दूर

करने तथा खेतो में पैदावार बढ़ने की भावना से और कुछ विशेष उत्सवों के अवसरों पर शक्तिओ का नियंत्रण होता है ।"

आभूषणों पर निर्मित चित्र, गुदना, खातों की बुनाई, लकड़ी के उपकरणों पर शानदार नक्काशी, मिट्टी के बर्तनो पर विविध रंगो की चित्रकारी वस्त्रादि पर अंकित मनोरम चित्रादि - चित्रकला के विभिन्न रूप है । ये सब आदिवासी - चित्रकला के बाह्य स्वरुप है ।

वास्तुकला के प्रति भी आदिवासीओ की अभिरुचि द्रुष्टव्य है । अपन निवास-गृहो को ये इस प्रकार बनाते है की इनकी समस्त आवश्यकताए तो पूर्ण हो ही जाती है साथ-ही-साथ पशुओ के बांधने की भी प्रयाप्त व्यवस्था रहती है ।

संगीत - नृत्य आदि कलाएँ आदिवासियों की उद्दत रूचि से ओझल नहीं हो सकी है । (वशेष अध्ययनार्थ देखिए - 'ये थिरकते पैर', लेखक श्रीचन्द्र ।) यह स्पष्ट है की उन आदिवासी कलाओ ने शास्त्रीय कलाओ के रूप में अभिव्यंजित किया है ।

"स्वाभिमानी आदिवासियों की युद्धकला इतिहास के पुष्टो पर अंकित है । यों तो ये बड़े शान्त तथा सुशासित है । लेकिन अनाचार को ये किसी भी रूप में सह नहीं सकते है । भयानक युद्ध के लोमहर्षक विवरण आदिवासी गीतों में उपलब्ध है । माहाराणा प्रताप के साथी ये ही वनवासी थे, जिन्होंने अपने शत्रुओ के दाँत खट्टे किये थे । इस सम्बन्ध में डॉ. महादेव साहा द्वारा लिखित 'साम्राजयवाद विरोधी संग्राम और आदिवासी' शीर्षक लेख पढनीय है।

सौन्दर्यानुभूति अनुस्यूत आदिवासी कला आपने महत्त्व में गरिमामयी है। उसकी उपेक्षा अवांछनीय हो । आज के प्रगतिशील युग में उसकी रक्षा के प्रयाप्त उपाय अपेक्षित है । सुधार अवश्य हो, लेकिन प्राचीन संस्कृति के शव पर नहीं अपितु पुरातन सांस्कृतिक चेतना की अभिवृद्धि के साथ नूतनता का स्वागत अभिलषित है, अभिनंदनीय है ।

:: सन्दर्भ संकेत::

१. शहडोल जिले के आदिवासी : एक सर्वेक्षण (लोक-कला से आभार)

२. आदिवासी प्रकाशन, विभाग, सुचना और प्रसारण मन्वालय भा. स. पृ। १२३